

# किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफसरों का कैसे पेट भरा

मिखाईल सलतिकोव-श्चेद्रीन







## मिखाईल सल्टिकोव-श्चेद्रीन (1826-1889)

“मनमानी, कपटभाव, झूठ, लुटेरापन, गद्दारी और मूर्खता के विरुद्ध आवाज उठाना ही मेरे साहित्य-सृजन का स्थायी विषय बना रहा है...” मिखाईल सल्टिकोव-श्चेद्रीन ने अपने कृतित्व के बारे में लिखा है। उनकी सबसे अधिक विख्यात रचना है—

‘श्रीमान गोर्लोव्योव’। इसमें एक जमींदार-परिवार की कहानी कही गयी है। किन्तु दरअसल इसमें जारकात्तीन रूस के समूचे जमींदार वर्ग की परोपजीविता का गहन तथा निर्मम भण्डाफोड़ किया गया है।

‘किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफसरों का कैसे पेट भरा’ (1869) लोक-कथा की शैली में लिखा गया है। श्चेद्रीन द्वारा जीवन के अन्तिम वर्षों में लिखे गये ‘किस्से’ मानो महान रूसी व्यंग्यकार के पूरे कृतित्व का जिन्होंने रूसी क्रान्तिकारी जनवादी चिन्तन के विकास में बड़ा योगदान किया, निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।



कितना यह कि एक देहाती ने  
दो अफसों का कैसे पेट भरा

मिखाईल सल्लिकोव-श्चेद्रीन



अनुशंग ट्रस्ट

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 15 रुपए

पहला हिन्दी संस्करण 2003

पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2008

प्रकाशक

अनुशम ट्रस्ट

डी - 68, निशालानगर

लखनऊ - 226020

आवर्ण एवं रेखांकन

रामबाबू

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ



## लेखक के बारे में

उन्नीसवीं शताब्दी में रूस में कई ऐसे महान लेखक पैदा हुए, जिनकी रचनाएँ आज भी विश्व साहित्य की अनमोल धरोहर मानी जाती हैं। पुश्किन, गोगोल, तुर्गनेव, तोल्स्तोय, दोस्तोयेव्स्की, कोरोलेंको, चेखव आदि रचनाकारों के इस तारामण्डल में एक महत्वपूर्ण नाम मिखाइल सल्टिकोव-श्चेद्रीन का भी है।

वह युग यूरोप और रूस के साहित्य में यथार्थवाद के विकास का युग था। यथार्थवादी साहित्य समाज की कड़वी-कठोर सच्चाइयों को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि पाठक बेचैन हो उठे तथा सामाजिक बुराइयों के कारणों को जानने समझने की और उन्हें दूर करने की कोशिश करे। इस तरह यथार्थवादी साहित्य मनुष्य को ऊँचे जीवन-आदर्शों के लिए जीने और संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है, उसे लगातार और बेहतर मनुष्य बनाता है।

सल्टिकोव-श्चेद्रीन ऐसे ही साहित्य के एक महान रचयिता थे। उनका जन्म 1826 में तथा निधन 1889 में हुआ। वह रूस में जारशाही का जमाना था। जार रूस के बादशाह को कहा जाता था। जार की हुकूमत जनता पर जोरो-जुल्म की हुकूमत थी। देश के किसानों और मेहनतकशों को निचोड़कर जमींदार वर्ग के लोग और अफसर बेशुमार मौज-मस्ती और विलासिता का जीवन बिताते थे। सल्टिकोव-श्चेद्रीन एक सहृदय मानवतावादी थे। उनकी आत्मा जागीरदारों-जमींदारों और जार के अफसरों की परोपजीविता और निर्ममता के विरुद्ध विद्रोह कर उठी। उन्होंने लेखनी को हथियार बनाकर न्याय और मानवता के लिए संघर्ष का संकल्प लिया और पूरा जीवन इस सत्कार्य में लगा दिया।

‘श्रीमान गोलोव्ल्योव’ सल्टिकोव-श्चेद्रीन की सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसमें एक जमींदार परिवार की कहानी कही गयी है। लेकिन दरअसल इसमें जारकालीन रूस के समूचे जमींदार वर्ग की परोपजीविता का, उनके निठल्लेपन और मुफ्तखोरी का बेलागलपेट भण्डाफोड़ किया गया है। अपनी रचनाओं के बारे में सल्टिकोव-श्चेद्रीन ने एक जगह लिखा है : “मनमानी, कपटभाव, झूठ, लुटेरापन, गद्दारी और मूर्खता के विरुद्ध आवाज उठाना ही मेरे साहित्य-सृजन का स्थायी विषय बना रहा है...।”

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में सल्टिकोव-श्चेद्रीन ने ‘किस्सों’ की शैली अपनाकर तत्कालीन रूसी समाज के शरीफजादों के तड़क-भड़क और पाखण्ड भरे जीवन को अपने तीखे-धारदार व्यंग्य का निशाना बनाया।

दुनिया के किसी भी देश में, जब तक भारी आबादी की मेहनत के बूते पर मुट्ठीभर निकम्मे लोग ऐश की जिन्दगी बिताते रहेंगे, तब तक सल्टिकोव-श्चेद्रीन की व्यंग्य और विद्रोह भरी आवाज गूँजती रहेगी।



## इस कहानी के बारे में

‘किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफसरों का कैसे पेट भरा’ नामक यह कहानी सल्लिकोव-श्चेद्रीन ने 1869 में लिखी थी। यह बेहद दिलचस्प कहानी लोककथा की शैली में लिखी गयी है जिसमें हास्य-व्यंग्य का भरपूर पुट है। इसमें एक काल्पनिक स्थिति का निर्माण किया गया है जिसमें एक द्वीप पर फँसे दो अफसरों को एक देहाती भूखों मरने से बचाता है, उनकी सेवा करता है और फिर उन्हें घर तक पहुँचाता है। दोनों अफसर उस देहाती की सेवा और मेहनत को उसका कर्तव्य मानते हैं और अपना जन्मसिद्ध अधिकार। वे उस देहाती का अहसान मानने के बजाय बात-बात में उसे लताड़ते-धिक्कारते रहते हैं।

सल्लिकोव-श्चेद्रीन दरअसल इस कहानी में जो सवाल उठाते हैं, वह आज भी मौजूद है और हमारे इर्द-गिर्द चारों ओर मौजूद है। हमारे समाज में भी पढ़े-लिखे सफेदपोश लोग मेहनत-मशक्कत करने वालों को उसी तरह नीची निगाह से देखते हैं जैसे पहले सामन्ती कुलीन लोग देखते थे। जो खेतों में अनाज-सब्जियाँ पैदा करते हैं, जो कल-कारखानों में लोहा, बिजली, सीमेण्ट, कपड़ा, कागज पैदा करते हैं, जो बाँध, सड़कें, इमारतें, कारखाने बनाते हैं, जो रिक्शा, ऑटो, ठेला चलाते हैं, जो हमारे जीने की सबसे बुनियादी जरूरत की चीजें पैदा करते हैं, उन्हें ही अक्सर पढ़े-लिखे लोग अपने पैरों की जूती समझते हैं। मानव ने अपनी विकास-यात्रा में जीने की जरूरत से उत्पादन की शुरुआत की थी और फिर उत्पादन के विकास के लिए उत्पादन से ही हासिल अनुभव को इस्तेमाल किया गया। इस तरह ज्ञान का जन्म हुआ। लेकिन आगे चलकर समाज में जब असमानता पैदा हुई, जब थोड़े से लोग व्यवस्था के नाम पर काम करने वालों पर हुकूमत करने लगे और मुफ्तखोर हो गये तो फिर बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम का बँटवारा भी बढ़ता चला गया था बौद्धिक काम करने वाले शारीरिक काम करने वालों को नीच समझने लगे। यह चीज शहर में, गाँव में—सभी जगह देखी जा सकती है। भारत में जाति-व्यवस्था के मूल में भी इस चीज को देखा जा सकता है। भोजपुरी के एक लोक कवि ने बिलकुल ठीक ही लिखा है : “जे तक करे काम छोट कहलावे, ऊ बा बड़ मनई जे जतन बतावे।”

मानव समाज में शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम का अन्तर जब तक रहेगा, तब तक परोपजीवी लोग उत्पादन के कामों और उत्पादन करने वालों को नीचा करके देखते रहेंगे, तब तक सच्चा मानवीय और न्याय एवं समता से युक्त समाज नहीं बन सकता। बेशक यह एक लम्बी यात्रा है। पर यही मानव-समाज का लक्ष्य है। सच्चा साहित्य हमें इस लक्ष्य की हर पल याद दिलाता रहता है तथा इसे अपना जीवन-लक्ष्य बनाने के लिए प्रेरित करता रहता है। सल्लिकोव-श्चेद्रीन की रचनाएँ इसी कोटि का साहित्य हैं और यह कहानी भी इस दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।



# किश्सा यह कि एक देहाती ने दो अफसरों का कैसे पेट भरा

कहते हैं कि कभी किसी ज़माने में दो अफसर थे। दोनों ही थे बड़े तरंगी और मनमौजी। जाने एक बार उन्हें क्या तरंग आयी, क्या धुन समायी कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचे जहाँ आदमी का नामो-निशान भी नहीं था।

दोनों अफसरों ने उम्रभर किसी दफ्तर में नौकरी की थी। वे वहीं जन्मे, वहीं उनका पालन-पोषण हुआ और उसी दफ्तरी घेरे में बन्द रहे। परिणाम यह कि कूपमंडूक हो गये, न कुछ जानें न समझें। सिर्फ इन शब्दों तक ही दौड़ थी उनकी—“अपनी वफादारी का यकीन दिलाता हूँ।”

कुछ वक्त गुजरा, उस दफ्तर की ज़रूरत न रही, उसे बन्द कर दिया गया। इन दोनों अफसरों की वहाँ से छुट्टी हो गयी। जब करने-धरने को कुछ न रहा, तो दोनों पीटर्सबर्ग की पोद्याचेस्काया सड़क पर आ बसे। दोनों ने अलग-अलग मकानों में डेरा जमाया, दोनों ने अलग-अलग बावर्चिन रखी और दोनों अपनी पेंशन पाने लगे। एक दिन अचानक हुआ क्या कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचे, जहाँ न आदमी था, न आदमज़ाद। आँख खुली तो क्या देखते हैं कि दोनों एक ही रज़ाई ओढ़े पड़े हैं। ज़ाहिर है कि शुरू में तो दोनों एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे, कुछ न समझ पाये कि किस्सा क्या है। फिर ऐसे बतियाने के मानो कुछ हुआ ही न हो। “महानुभाव, अभी-अभी एक अजीब-सा सपना देखा है, मैंने,” एक अफसर ने कहा। “देखता क्या हूँ कि एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचा हूँ, जहाँ आदमी का नाम है न निशान”

इतना कहकर वह एकदम उछल पड़ा। दूसरा अफसर भी उछला।





“हाय राम । यह क्या माजरा है ! कहाँ हैं हम ?” दोनों अफसर एकसाथ ही चिल्ला उठे । बिल्कुल परायी-परायी-सी थी उनकी आवाज ।

यह जानने के लिए कि सपना है या सत्य, वे लगे एक-दूसरे को छूने । मगर वे जितना अपने को यह समझाने की कोशिश करते कि वह सपने से अधिक कुछ नहीं था, उतना ही उन्हें अफसोस के साथ यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ता कि वह ठोस हकीकत है ।

उनके सामने एक तरफ तो समुद्र और दूसरी तरफ ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा था । ज़मीन के इस टुकड़े के आगे भी जहाँ तक नज़र जाती थी, सागर ही लहराता हुआ दिखाई दे रहा था । दफ्तर बन्द होने के बाद दोनों अफसरों के रोने का यह पहला मौका था ।

दोनों अफसरों ने ध्यान से एक-दूसरे को देखा । क्या देखते हैं कि वे सोने के समय की पोशाक पहने हैं और दोनों के गले में चमचमा रहे हैं सरकारी तमग़े ।

“अब अगर गर्म-गर्म कॉफी आ जाये, तो कैसा मज़ा रहे !” एक अफसर कह ही उठा । मगर तभी उसे याद हो आया कि उसके साथ कैसा भद्दा मज़ाक हुआ है, जो न कभी किसी ने देखा होगा, न सुना होगा । वह दूसरी बार रो पड़ा ।

“मगर अब हम करेंगे तो क्या ?” आँसू बहाते हुए वह कहता गया । “क्या झटपट रिपोर्ट लिखकर तैयार की जाये ? पर क्या लाभ होगा उससे ?”

“देखिये मैं बताऊँ, महानुभाव,” दूसरे अफसर ने जवाब दिया, “आप जायें पूरब की ओर मैं जाऊँगा पश्चिम को । शाम को फिर इसी जगह मिलेंगे । हो सकता है कि कोई सूरत निकल आये !”

चुनांचे पूरब और पश्चिम की ढूँढ़-तलाश शुरू हुई । उन्हें याद आया कि कैसे एक बार एक बड़े अफसर ने समझाया था—“अगर पूरब का पता लगाना चाहते हो, तो उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हो जाओ । तुम्हारे दायें हाथ को होगा पूरब ।” अब उत्तर की खोज शुरू हुई, इधर घूमे और उधर मुड़े, सभी दिशाओं में घूम-घूमकर हार गये । मगर चूँकि सारी उम्र तो गुज़री थी दफ्तर के घेरे में बन्द रहकर, इसलिये न पूरब मिला, न उत्तर ।

“देखिये महानुभाव, ऐसा करते हैं कि आप जायेंगे दायें को और मैं जाऊँगा बायें को । यह ज़्यादा ठीक रहेगा ।” एक अफसर ने दूसरे से कहा । यह सुझाव देने वाला अफसर दफ्तर में काम करने के अलावा फौजियों के बच्चों के स्कूल में कुछ अर्से तक सुलेख का अध्यापक भी रहा था । इसकी बदौलत वह कुछ अधिक समझदार था ।

तय किया और दोनों चल दिये । दायें हाथ को जाने वाले अफसर ने देखा कि पेड़ हवा में झूल रहे हैं, फलों से टहनियाँ लदी हैं । अफसर का मन हुआ कि फल खाये, बेशक एक सेब ही । मगर वे इतने ऊँचे थे कि उन तक पहुँच पाना बहुत कठिन था । फिर भी उसने चढ़ने की कोशिश की, मगर कुछ हाथ न लगा । क़मीज तार-तार होकर रह गयी । अफसर एक सोते के निकट पहुँचा । देखा





कि वहाँ बड़ी प्यारी-प्यारी मछलियाँ हैं वैसी, जैसी कि फोन्तान्का सड़क के तालाब में। इधर-उधर छपछपा रही थीं वे अठखेलियाँ करती हुई।

“काश कि पोद्याचेस्काया सड़क वाले मेरे घर में ऐसी मछलियाँ होतीं?” अफसर ने सोचा और उसके मुँह में पानी भर आया।

अफसर पहुँचा जंगल में—वहाँ जंगली मुर्गे सीटियाँ बजा रहे थे, तीतर-बटेर कट-कट करते और खरगोश फुदकते फिर रहे थे।

“हे भगवान! जिधर देखो खुराक! जहाँ देखो खुराक!” अफसर ने कुछ ऐसे महसूस किया कि उबकायी आयी कि आयी।

आखिर करता तो क्या! मिलने के लिये तय की हुई जगह पर खाली हाथ लौटना पड़ा। वहाँ पहुँचा तो देखा कि दूसरा अफसर पहले से ही वहाँ विराजमान था।







“कहिये, महानुभाव, कुछ काम बना?”

“‘मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती’ अखबार की एक पुरानी कापी हाथ लगी है, बस और कुछ नहीं।”

दोनों अफसर फिर से सोने के लिये लेट गये। मगर पेट में तो चूहे कूद रहे थे, नींद भला कैसे आती। कभी उन्हें यह ख्याल परेशान करता कि कौन उनकी जगह पेंशन वसूलेगा, तो कभी दिन के वक्त देखे हुए फल, मछलियाँ, मुर्गे, तीतर-बटेर और खरगोश उनकी आँखों के सामने घूमने लगते।

“कौन इस बात की कल्पना कर सकता था, महानुभाव कि इन्सान की खुराक अपनी असली शक्ल में हवा में उड़ती और पानी में तैरती फिर रही है, पेड़ों पर लदी पड़ी है?” एक अफसर ने कहा।

“हाँ,” दूसरे अफसर ने जवाब दिया, “मानना ही पड़ता है और मैं अब तक यही समझता रहा हूँ कि पावरोटी जिस शक्ल में सुबह कॉफी के साथ मिलती है, वह उसी शक्ल में तैयार पैदा होती है।”

“तो नतीजा यह निकला कि मिसाल के तौर पर यदि कोई बटेर खाना चाहता हो, तो सबसे पहले उसे पकड़े, उसकी गर्दन पर छुरी चलाये, उसे साफ करे और भूने मगर यह सब किया जाये तो कैसे?”

“बिल्कुल सही कहा आपने,” दूसरा अफसर बोला। “यह सब हो तो कैसे?”

दोनों चुप हो गये और सोने की कोशिश करने लगे। मगर क्या मजाल की भूख नींद को पास भी फटकने दे। आँखों के सामने तो घूम रहे थे जंगली मुर्गे, बत्तखें और सूअर—धीमी-धीमी आँच पर सेंके हुये—खीरों, अचारों और दूसरे सलादों से सजे हुए।

“मेरा तो ऐसे मन होता है कि अपने जूते खा जाऊँ,” एक अफसर ने कहा।

“अगर काफी अर्से तक पहने हुए हों, तो दास्ताने भी कुछ बुरे न रहते!” दूसरे अफसर ने गहरी साँस लेकर कहा।

अचानक दोनों अफसरों ने एक-दूसरे को बुरी तरह से घूरा। दोनों की आँखों में खून की प्यास चमकी, दोनों के दाँत बजे और छाती से घरघरायी-सी आवाज़ निकली। दोनों धीरे-धीरे एक दूसरे की तरफ बढ़ने लगे और पलक झपकते में एक दूसरे को फाड़ खाने के लिए झपट पड़े। कपड़े चिथड़े होकर इधर-उधर गिरने लगे, वे जोरों से चीखने-चिल्लाने लगे। स्कूल में सुलेख का अध्यापक रह चुकने वाले अफसर ने अपने साथी का तमगा झपट लिया और आन की आन में उसे निगल गया। मगर जब उन्होंने खून बहता देखा, तो जैसे उन्हें होश आया।

“राम, राम!” दोनों ने एकसाथ ही कहा। “ऐसे तो हम दोनों एक दूसरे को नोच खायेंगे!”

“मगर हम यहाँ आ कैसे फँसे! कौन था वह बदमाश जिसने हमारे साथ ऐसा भद्दा बर्ताव कर डाला!”

“महानुभाव, किसी तरह बातचीत द्वारा वक्त काटना चाहिए, वरना यहाँ खून ही खून नज़र आयेगा।” एक अफसर ने कहा।





“तो शुरू कीजिए!” दूसरे अफसर ने जवाब दिया।

“मसलन इस मसले पर आपका क्या विचार है—सूरज पहले निकलता है और फिर छिपता है, इसके उलट क्यों नहीं होता?”

“आप भी बड़े अजीब आदमी हैं, महानुभाव! आप भी तो पहले उठते हैं, फिर दफ्तर जाते हैं, वहाँ कलम घिसते हैं और फिर आराम करते हैं।”

“मगर क्यों भला इसके उलट न हो—मैं पहले नींद का मज़ा लूँ, तरह-तरह के सपने देखूँ और फिर बिस्तर से उठूँ?”

“हूँ, हाँ, मगर मैं जब तक दफ्तर में काम करता था, तो हमेशा इसी तरह सोचा करता था—लो सुबह हो गयी, फिर दिन होगा, फिर शाम का खाना खाया जायेगा और फिर आराम किया जायेगा।”

खाने का जिक्र आते ही दोनों पर फिर उदासी छाने लगी और यह बातचीत यहीं खत्म हो गयी।

“मैंने किसी डाक्टर से सुना था कि इन्सान बहुत समय तक अपने शरीर में संचित रसों के सहारे जिन्दा रह सकता है,” एक अफसर ने फिर से बातचीत शुरू की।



“यह कैसे हो सकता है?”

“जी, ऐसे ही होता है—शरीर में संचित रसों से दूसरे रस पैदा होते हैं। इन रसों से आगे और रसों का जन्म होता है। इसी तरह यह चक्र तब तक चलता जाता है, जब तक कि ये रस पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते।”

“जब वे समाप्त हो जाते हैं, तब?”

“तब कोई न कोई खुराक मिलनी ही चाहिए।”

“छिः!”

मतलब यह कि बातचीत चाहे कोई भी क्यों न शुरू करते, वह घूम-फिर कर खाने से जा जुड़ती और उनकी भूख और अधिक चमक उठती। उन्होंने बातचीत बन्द करने का फैसला किया। तभी उन्हें ‘मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती’ अखबार की पुरानी कापी का ध्यान आया। लगे दोनों उसे बड़े चाव से पढ़ने।

एक अफसर ने उत्तेजित आवाज में पढ़ना शुरू किया—

“हमारी प्राचीन राजधानी के माननीय राज्यपाल ने कल एक शानदार दावत की। सौ व्यक्ति खाने पर हाजिर थे और प्रबन्ध ऐसा था कि बस कमाल! आश्चर्यचकित कर देने वाली इस दावत में सभी देशों के एक से एक बढ़िया उपहार उपस्थित थे। ये उपहार मानो एक दूसरे से भेंट करने आये थे। कैसी-कैसी ज़ायक़ेदार चीज़ें थीं वहाँ—शेक्सना नदी की सुनहरी स्तेर-ल्याद मछली, काकेशिया के जंगलों के तीतर-बटेर और फरवरी के महीने में हमारे उत्तर में दुर्लभ स्ट्राबेरियाँ भी।”

“छिः छिः, हे भगवान! महानुभाव, इसके सिवा क्या कोई दूसरी खबर नहीं खोज सकते थे?” दूसरा अफसर खीझकर चीख उठा। अपने साथी के हाथ से अखबार छीनकर वह खुद पढ़ने लगा—

“तूला नगर से ख़बर मिली है—कल ऊपा नदी में स्टरजन मछली के पकड़े जाने की खुशी में स्थानीय क्लब में एक शानदार समारोह मनाया गया (इस नदी में स्टरजन मछली का पकड़ा जाना एक ऐसी अनोखी घटना है, जिसकी बड़े-बूढ़ों तक को याद नहीं। इतना ही नहीं, प्रदेश के थानेदार और मछली में बड़ी समानता थी)। इस मछली को लकड़ी की एक बहुत बड़ी तश्तरी में रखकर मेज पर टिकाया गया। इसके चारों तरफ खीरे लगे हुए थे और मुँह में सब्जी थी। डा. पी. साहब के हाथ में इस समारोह का प्रबन्ध था। उन्होंने इस बात की भरसक कोशिश की कि हर व्यक्ति को इस मछली का टुकड़ा चखने को मिले। चटनियाँ ऐसी लज़ीज़ थीं कि हर आदमी होंठ चाटता रह गया।”

“क्षमा कीजिए, महानुभाव, किन्तु लगता यही है कि विषय का चुनाव करने में आपने भी सावधानी से काम नहीं लिया।” पहले अफसर ने कहा और उसके हाथ से अखबार लेकर खुद पढ़ने लगा—

“व्यात्का नगर से समाचार मिला है—यहाँ के एक पुराने निवासी ने मछली का शोरबा बनाने की एक नयी विधि खोज निकाली है। एक बड़ी ट्रेट मछली लेकर उसकी खाल इस तरह उधेड़ें कि दर्द के



मारे उसकी कलेजी फैल जाये। तब—

दोनों अफसर सिर थामकर बैठ गये। वे जिस भी चीज़ की तरफ अपना ध्यान लगाते, वही उन्हें खाने-पीने की याद दिलाती। सच तो यह है कि स्वयं उनके विचार उनके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे थे। कारण कि वे भुने हुए मांस के ख्याल को जितना अधिक अपने दिमाग से निकालने की कोशिश करते, उन्हें उसकी उतनी ही अधिक याद सताती।

सुलेख का अध्यापक रह चुकनेवाले उस अफसर के दिमाग के अचानक कल्पना की उड़ान भरी...

“महानुभाव!” उसने खुश होकर कहा। “अगर हम कोई देहाती ढूँढ़ लायें, तो कैसा रहे?”

“क्या मतलब आपका—कैसा देहाती?”

“यही आम देहाती—जैसे कि होते हैं आम गँवार देहाती! वह भी हमारे लिए पावरोटी ला देगा, मछलियाँ और परिन्दे पकड़ लायेगा!”

“हूँ—देहाती—ख्याल तो अच्छा है। मगर जब यहाँ कोई है ही नहीं, तो आयेगा कहाँ से?”

“देहाती न हो—यह कैसे हो सकता है! देहाती हर जगह होते हैं, जरूरत है सिर्फ उन्हें खोजने





की! यहीं, कहीं न कहीं छिपा बैठा होगा वह कामचोर!”

इस ख्याल से दोनों अफसर खुशी के मारे उछल पड़े, जोश में आकर झटपट उठे और देहाती की तलाश में चल दिये।

देर तक वे जहाँ-तहाँ भटकते रहे, मगर कोई देहाती न मिला। आखिर उन्हें मोटे आटे की रोटी और कच्चे चमड़े की गन्ध आयी। वे उसी तरफ चल दिये। देखते क्या हैं कि एक पेड़ के नीचे एक लम्बा-तड़ंगा आदमी पड़ा है, पेट फुलाये, सिर के नीचे बाँह का तकिया बनाये। बहुत ही बेशर्मी से हरामखोरी कर रहा था पड़ा हुआ। अफसर तो उसे इस तरह कामचोरी करते देखकर आग-बबूला हो उठे।

“उठ रे आलसी!” दोनों अफसर उसे डाँटने-डपटने लगे। “इसके तो कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। अरे देखता नहीं, यहाँ दो अफसर पिछले दो दिनों से भूख से दम तोड़ रहे हैं! उठकर लग जा काम से!”

देहाती उठकर खड़ा हुआ। देखता क्या है कि अफसर तो गर्मिजाज आदमी हैं। उसका निकल भागने को मन हुआ, मगर अफसर उस पर ऐसे टूट पड़े कि निकल भागना मुमकिन न रहा।

जुट गया वह उनकी सेवा में।

पहला काम तो उसने यह किया कि पेड़ पर चढ़ गया और अफसरों के लिए खूब पके हुए दस-दस सेब तोड़ लाया। खुद अपने लिये उसने एक खट्टा-सा सेब रख लिया। फिर उसने ज़मीन खोदी और उसमें से आलू निकाले। इसके बाद उसने लकड़ी के दो टुकड़े लिये, उन्हें रगड़कर उनमें से आग पैदा की। फिर उसने अपने बालों का जाल बुना और एक बटेर फाँस लिया। आखिर उसने आग जलाकर तरह-तरह के इतने खाने तैयार कर दिये कि खुद अफसर भी यह सोचे बिना न रह सके—इस निकम्मे को भी कुछ हिस्सा तो मिलना ही चाहिए।

अफसरों ने इस देहाती को तरह-तरह के यत्न करते देखा, उनके दिल बाग़-बाग़ हो गये। वे यह तक भूल गये कि एक दिन पहले तो वे भूख से मरे जा रहे थे। अब उन्हें ख्याल आया कि अफसर होना क्या अच्छी बात है, हर जगह काम निकाला जा सकता है!

“अफसर साहब, आप खुश तो हैं न?” आलसी गँवार ने उनसे पूछा।

“हाँ, हम खुश हैं, दोस्त! बहुत मेहनत से काम किया है तुमने!” अफसरों ने जवाब दिया।

“इजाज़त हो तो मैं अब थोड़ा आराम कर लूँ?”

“हाँ, हाँ, तुम्हें इजाज़त है आराम करने की। मगर जाने से पहले एक रस्सी बनाकर दे जाओ।”

देहाती ने झटपट जंगली सन इकट्ठा किया, उसे पानी में भिगोकर नर्माया, पीट-पीटकर उसकी मूँज बना डाली। शाम होते तक रस्सी तैयार हो गयी। अफसरों ने इसी रस्सी से देहाती को पेड़ से बाँध दिया कि कहीं भाग न जाये। वे खुद आराम करने के लिए लैट गये।



एक दिन गुजरा, दूसरा दिन गुजरा। इसी बीच देहाती ऐसा होशियार हो गया कि लगा अंजलि में शोरबा तैयार करने! हमारे अफसरों की खूब मजे में कटने लगी, मोटे-ताजे हो गये, तोंद बढ़ने लगी और रंग निखर आया। अब वे आपस में बातचीत करते—यहाँ तो हर चीज़ तैयार मिलती है और इसी बीच पीटर्सबर्ग में हमारी पेंशने हैं कि जमा होती चली जा रही हैं।

“क्या ख्याल है आपका, महानुभाव, यह जो बाबुल की मीनार” की चर्चा की जाती है, वह हकीकत है या कोरा मनगढ़न्त किस्सा?” नाश्ते के बाद एक अफसर ने दूसरे से पूछा।

“मेरे ख्याल में तो हकीकत ही है, महानुभाव! वरना दुनिया में बहुत-सी अलग-अलग भाषाओं के होने का क्या कारण हो सकता है!”

“तब तो यह भी सही है कि प्रलय हुआ था?”

“खाक प्रलय हुआ था, वरना प्रलय के पहले के जानवरों के अस्तित्व को कैसे स्पष्ट किया जा सकता है? और फिर ‘मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती’ लिखता है कि—”

“अब अगर ‘मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती’ की कापी पढ़ डाली जाये, तो कैसा रहे।?”

समाचारपत्र की कापी ढूँढ़ी गयी, दोनों साहब इतमीनान से छाया में जा बैठे और शुरू से आखिर तक उसे पढ़ गये। उन्होंने मास्को, तूला, पेंज़ा और रियाज़ान की दावतों का पूरा विवरण पढ़ा, मगर इस बार उन्हें उबकायी नहीं आयी!



\* बाबुल की मीनार का निर्माण बाइबिल में पायी जानी वाली एक पौराणिक कथा है। इस कथा का सार यह है कि बाबुल की मीनार के निर्माता इसे इतनी ऊँची बनाना चाहते थे कि वह आकाश को छू सके। मगर भगवान ने निर्माताओं को दण्ड देते हुए उनकी भाषा ऐसी गड़बड़ा दी कि वे एक-दूसरे की बात समझने में असमर्थ हो गये।—सं.



बहुत दिन बीते या थोड़े, आखिर को अफसर वहाँ रहते-रहते उदास हो गये। रह-रहकर उन्हें पीटर्सबर्ग में रह जाने वाली बावर्चिनों की याद सताने लगी। कभी-कभी तो वे छिप-छिपकर आँसू भी बहाने लगे।

“महानुभाव, जाने इस वक़्त क्या हो रहा होगा पोद्याचेस्काया सड़क पर?” एक अफसर ने दूसरे से पूछा।

“उसकी चर्चा न कीजिए, महानुभाव! दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है!” दूसरे अफसर ने जवाब दिया।

“वैसे तो यहाँ भी खूब मजा है—ऐसा मज़ा कि बयान से बाहर! मगर फिर भी मेढ़े को भेड़ से अलग होकर चैन नहीं मिलता और फिर वर्दी का भी तो कुछ कम ग़म नहीं!”

“ग़म-सा ग़म है वह! वर्दी भी चौथे दर्जे के अफसर की। उसकी तो सिलाई देखकर ही सिर चकराने लगता है!”

अब वे दोनों लगे देहाती पर इस बात के लिए जोर डालने कि जैसे भी हो वह उन्हें पोद्याचेस्काया सड़क पर उनके घर पहुँचा दे। और लीजिये! देहाती तो उनकी पोद्याचेस्काया सड़क भी जानता है। वह वहाँ जा चुका है, मूँछों को शराब-शहद से भिगो चुका है, मगर उनके मज़े से वंचित रहा है।

“हम पोद्याचेस्काया के ही तो अफसर हैं!” अफसरों ने खुश होकर कहा।

“जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, हुज़ूर, तो आपने घर के बाहर रस्से के सहारे लटककर दीवार या छत रंगने वाले और मक्खी की तरह नजर आने वाले किसी आदमी को देखा होगा? मैं वही हूँ, सरकार!” देहाती ने बताया।

अब देहाती दिमाग़ पर बहुत जोर डालकर यह सोचने लगा कि कैसे उन अफसरों को खुश करे, जो उस निकम्मे से इतनी मेहरबानी से पेश आये थे और उन्होंने उस देहाती के काम पर नाक-भौंह नहीं सिकोड़ी थी। सोच-सोचकर उसने यह किया कि एक जहाज़ बना डाला। जहाज़ तो खैर, उसके बनाये क्या बन पाता, पर एक ऐसी नाव जरूर बना डाली कि सागर-समुद्र के पार पोद्याचेस्काया सड़क पर सही-सलामत पहुँचा जा सके।

“देख रे बदमाश, कहीं हमें डुबो मत देना!” उस नाममात्र के जहाज़ को लहरों पर डोलते हुए देखकर अफसरों ने उसे डांटा।

“तसल्ली रखिये, हुज़ूर! कोई पहली बार थोड़े ही है,” उसने जवाब दिया कि सफर की तैयारी कर ली।



देहाती ने हंसों के नर्म-नर्म पंख इकट्ठे करके उन्हें नाव की तली में बिछाया और अफसरों को इस नर्म बिस्तर पर लिटा दिया। फिर उसने भगवान का नाम लिया, सलीब बनायी और नाव बढ़ा दी। रास्ते में जब तूफान आते, तेज हवाएँ चलतीं, तो अफसरों की जान निकलती और वे देहाती को उसके आलस, उसकी कामचोरी के लिए ऐसी जली-कटी सुनाते कि न कलम लिख सके और न जबान बयान कर सके। मगर देहाती था कि नाव बढ़ाता गया, बढ़ाता गया और अफसरों को नमकीन मछलियाँ खिलाता गया।

आखिर नेवा-मैया नजर आयी, उसके आगे दिखाई दी प्रसिद्ध साम्राज्ञी येकातेरीना की नहर और फिर वहीं तो थी बड़ी पोद्याचेस्काया सड़क! तो पहुँच गये वे सकुशल अपने घर! बावर्चिने तो हक्की-बक्की रह गयीं। कैसे मोटे-ताजे हो गये हैं उनके साहब, कैसा निखार है चेहरे पर, कैसे रंग में, कैसे मजे में नजर आ रहे हैं वे! अफसरों ने कॉफी पी, पावरोटियाँ खायीं और वर्दियाँ चढ़ा ली। वर्दियाँ चढ़ाकर वे पहुँचे सरकारी खज़ाने में, वहाँ जो पेंशन की रक़म मिली, तो इतनी अधिक कि न लिखी जाये, न बयान की जाये!

साहब लोगों ने देहाती को भुलाया नहीं। उसे वोदका का जाम भरकर भेजा और चाँदी के पाँच कोपेक इनाम में दिये। जा, मजे कर मियाँ देहाती!





